खोल दो

साअदत हसन मंटो

अमृतसर से स्पेशल ट्रेन दोपहर दो बजे को चली और आठ घंटों के बाद मुग़लपुरा पहुंची। रास्ते में कई आदमी मारे गये। अनेक ज़ख़्मी हुए और कुछ इधर-उधर भटक गये।

सुबह दस बजे कैम्प की ठंडी ज़मीन पर जब सराजुद्दीन ने आँखें खोलीं और अपने चारों तरफ़ मर्दों, औरतों और बच्चों का एक उमड़ता समुद्र देखा तो उसकी सोचने-समझने की शक्तियाँ और भी बूढ़ी हो गयीं। वह देर तक गदले आसमान को टकटकी बाँधे देखता रहा। यूँ तो कैम्प में हर तरफ़ शोर मचा हुआ था। लेकिन बूढ़े सराजुद्दीन के कान जैसे बंद थे। उसे कुछ सुनायी नहीं देता था। कोई उसे देखता तो ख़्याल करता कि वह किसी गहरी नींद में ग़र्क है, मगर ऐसा नहीं था। उसके होश-हवास ग़ायब थे। उसका सारा अस्तित्व शून्य में लटका हुआ था।

गदले आसमान की तरफ़ बग़ैर किसी इरादे के देखते-देखते सराजुद्दीन की निगाहें सूरज से टकरायीं। तेज़ रोशनी उसके अस्तित्व की रग-रग में उतर गयी और वह जाग उठा। ऊपर-तले उसके दिमाग़ पर कई तस्वीरें दौड़ गयीं --लूट, आग, भागम-भाग, स्टेशन, गोलियाँ, रात और सकीना..... सराजुद्दीन एकदम उठ खड़ा हुआ और पागलों की तरह उसने चारों तरफ़ फैले हुए इन्सानों के समुद्र को खँगालना शुरू किया।

पूरे तीन घंटे वह "सकीना-सकीना" पुकारता कैम्प की ख़ाक छानता रहा, मगर उसे अपनी जवान इकलौती बेटी का कोई पता न मिला। चारों तरफ़ एक धाँधली-सी मची थी। कोई अपना बच्चा ढूंढ़ रहा था, कोई माँ, कोई बीवी और कोई बेटी। सराजुद्दीन थक-हारकर एक तरफ़ बैठ गया और मस्तिष्क पर ज़ोर देकर सोचने लगा कि सकीना उससे कब और कहाँ अलग हुई, लेकिन सोचते-सोचते उसका दिमाग़ सकीना की माँ की लाश पर जम जाता, जिसकी सारी अन्तड़ियाँ बाहर निकली हुई थीं। उससे आगे वह और कुछ न सोच सकता।

सकीना की माँ मर चुकी थी। उसने सराजुद्दीन की आँखों के सामने दम तोड़ा था, लेकिन सकीना कहाँ थी, जिसके विषय में उसकी माँ ने मरते हुए कहा था "मुझे छोड़ दो और सकीना को लेकर जल्दी यहाँ से भाग जाओ।"

सकीना उसके साथ ही थी। दोनों नंगे पाँव भाग रहे थे। सकीना का दुपट्टा गिर पड़ा था। उसे उठाने के लिये उसने रुकना चाहा था। सकीना ने चिल्लाकर कहा था 'अब्बाजी छोड़िये'! लेकिन उसने दुपट्टा उठा लिया था। ... यह सोचते-सोचते उसने अपने कोट की उभरी हुई जेब की तरफ़ देखा और उसमें हाथ डालकर एक कपड़ा निकाला, सकीना का वही दुपट्टा था, लेकिन सकीना कहाँ थी?

सराजुद्दीन ने अपने थके हुए दिमाग़ पर बहुत ज़ोर दिया, मगर वह किसी नतीजे पर न पहुँच सका। क्या वह सकीना को अपने साथ स्टेशन तक ले आया था? -- क्या वह उसके साथ ही गाड़ी में सवार थी? -- रास्ते में जब गाड़ी रोकी गयी थी और बलवाई अन्दर घुस आये थे, तो क्या वह बेहोश हो गया था, जो वे सकीना को उठाकर ले गये?

सराजुद्दीन के दिमाग़ में सवाल ही सवाल थे, जवाब कोई भी नहीं था। उसको हमदर्दी की ज़रूरत थी, लेकिन चारों तरफ़ जितने भी इन्सान फँसे हुए थे सब को हमदर्दी की ज़रूरत थी। सराजुद्दीन ने रोना चाहा, मगर आँखों ने उसकी मदद न की। आँसू न जाने कहाँ ग़ायब हो गये थे।

छः रोज़ के बाद जब होश-व-हवास किसी क़दर दुरुस्त हुए तो सराजुद्दीन उन लोगों से मिला जो उसकी मदद करने के लिये तैयार थे। आठ नौजवान थे, जिनके पास लाठियाँ थीं, बन्दूकें थीं। सराजुद्दीन ने उनको लाख-लाख दुआएँ दीं और सकीना का हुलिया बताया, "गोरा रंग है और बहुत ख़ूबसूरत है ... मुझ पर नहीं अपनी माँ पर थी ... उम्र सत्रह बरस के क़रीब है। ... आँखें बड़ी बड़ी ... बाल स्याह, दाहिने गाल पर मोटा-सा तिल ... मेरी इकलौती लड़की है। ढूँढ़ लाओ, ख़ुदा तुम्हारा भला करेगा।

रज़ाकार नौजवान ने बड़े जज़्बे के साथ बूढ़े सराजुद्दीन को यक़ीन दिलाया कि अगर उसकी बेटी ज़िन्दा हुई तो चन्द ही दिनों में उसके पास होगी।

आठों नौजवानों ने कोशिश की। जान हथेली पर रखकर वे अमृतसर गये। कई औरतों कई मर्दों और कई बच्चों को निकाल-निकालकर उन्होंने सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाया। दस रोज गुज़र गये, मगर उन्हें सकीना कहीं न मिली।

एक रोज़ इसी सेवा के लिये लारी पर अमृतसर जा रहे थे कि छहररा के पास सड़क पर उन्हें एक लड़की दिखायी दी। लारी की आवाज़ सुनकर वह बिदकी और भागना शुरू कर दिया। रज़ाकारों ने मोटर रोकी और सब-के-सब उसके पीछे भागे। एक खेत में उन्होंने लड़की को पकड़ लिया।

देखा, तो बहुत ख़ूबसूरत थी। दाहिने गाल पर बहुत मोटा तिल था। एक लड़के ने उससे कहा, "घबराओ नहीं -- क्या तुम्हारा नाम सकीना है?"

लड़की का रंग और भी ज़र्द हो गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया, लेकिन जब तमाम लड़कों ने उसे दम-दिलासा दिया तो उसकी दहशत दूर हुई और उसने मान लिया कि वह सराजुद्दीन की बेटी सकीना है।

आठ रज़ाकार नौजवानों ने हर तरह सकीना की दिलजोई की। उसे खाना खिलाया, दूध पिलाया और लारी में बैठा दिया। एक ने अपना कोट उतारकर उसे दे दिया, क्योंकि दुपट्टा न होने के कारण वह बहुत उलझन महसूस कर रही थी और बार-बार बाँहों से अपने सीने को ढकने की कोशिश में लगी हुई थी।

कई दिन गुज़र गये -- सराजुद्दीन को सकीना की कोई ख़बर न मिली। वह दिन-भर विभिन्न कैम्पों और दफ़्तरों के चक्कर काटता रहता, लेकिन कहीं से भी उसकी बेटी का पता न चला। रात को वह बहुत देर तक उन रज़ाकार नौजवानों की कामयाबी के लिये दुआएँ माँगता रहता, जिन्होंने उसको यक़ीन दिलाया था कि अगर सकीना ज़िन्दा हुई तो चन्द दिनों में ही उसे ढूंढ़ निकालेंगे।

एक रोज़ सराजुद्दीन ने कैम्प में उन नौजवान रज़ाकारों को देखा। लारी में बैठै थे। सराजुद्दीन भागा-भागा उनके पास आया। लारी चलने ही वाली थी कि उसने पूछा, 'बेटा, मेरी सकीना का पता चला?'

सराजुद्दीन ने एक बार फिर उन नौजवानों की कामयाबी की दुआ माँगी और उसका जी किसी क़दर हल्का हो गया।

शाम के क़रीब कैम्प में जहाँ सराजुद्दीन बैठा था, उसके पास ही कुछ गड़बड़-सी हुई। चार आदमी कुछ उठाकर ला रहे थे। उसने मा़लूम किया तो पता चला कि एक लड़की रेलवे लाइन के पास बेहोश पड़ी थी। लोग उसे उठाकर लाये हैं। सराजुद्दीन उनके पीछे हो लिया। लोगों ने लड़की को अस्पताल वालों के सुपुर्द किया और चले गये।

कुछ देर वह ऐसे ही अस्पताल के बाहर गड़े हुए लकड़ी के खम्बे के साथ लगाकर खड़ा रहा। फिर आहिस्ता-आहिस्ता अन्दर चला गया। कमरे में कोई भी नहीं था। एक स्ट्रेचर था, जिस पर एक लाश पड़ी थी। सराजुद्दीन छोटे-छोटे क़दम उठाता उसकी तरफ़ बढ़ा। कमरे में अचानक रोशनी हुई। सराजुद्दीन ने लाश के ज़र्द चेहरे पर चमकता हुआ तिल देखा और चिल्लाया, 'सकीना!'

सराजुद्दीन के हलक़ से सिर्फ़ इस क़दर निकल सका, 'जी मैं ... जी मैं ... इसका बाप हूं।'

डॉक्टर ने स्ट्रेचर पर पड़ी हुई लाश की तरफ़ देखा उसकी नब्ज़ टटोली और सराजुद्दीन से कहा, 'खिड़की खोल दो।'

सकीना के मुर्दा जिस्म में जुंबिश हुई। बेजान हाथों से उसने इज़ारबंद खोला और सलवार नीचे सरका दी। बूढ़ा सराजुद्दीन ख़ुशी से चिल्लाया, 'ज़िन्दा है-मेरी बेटी ज़िन्दा है ...।' डॉक्टर सिर से पैर तक पसीने में ग़र्क़ हो गया।